बीटी बैंगनः लोकतंत्र में वैज्ञानिक विशेषज्ञता

फातिमा आलम

जिनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) बीटी बैंगन के व्यावसायीकरण को लेकर देश में चली बहस ने विज्ञान और राजनीति के बीच सम्बंधों तथा सरकारी नीति निर्धारण की प्रक्रिया में विशेषज्ञता के जटिल चरित्र की ओर ध्यान खींचा है। इस आलेख में प्रजातांत्रिक समाज में वैज्ञानिक विशेषज्ञों व विशेषज्ञता की भूमिका की चर्चा की गई है। यह चर्चा हमें वैधता, जवाबदेही, प्रतिनिधित्व और जनहित से सम्बंधित सवालों तक ले जाती है, जिनका सामना नीतिकारों को करना होगा।

इसके अलावा, आलेख में इस बात पर भी विचार किया गया है कि बीटी बैंगन के व्यापारीकरण के साथ जो तमाम संभावित लाभ तथा जोखिम जुड़े हैं, वे निर्णय प्रक्रिया को और भी जटिल बना देते हैं। निर्णय प्रक्रिया और भी मुश्किल इसलिए हो जाती है क्योंकि बीटी बैंगन का असर इतने विविध क्षेत्रों पर होगा। इन विविध क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा, किसानों के अधिकार, उपभोक्ताओं की पसंद-नापसंद, बौद्धिक संपत्ति कानून व बाज़ार की ताकतों का केंद्रीकरण, सार्वजनिक नैतिकता, स्वास्थ्य, पर्यावरण और जैव विविधता शामिल हैं।

और अंत में इस बात पर भी विचार किया गया है कि सार्वजनिक नीति निर्माण दरअसल जोखिमों के आकलन, विभिन्न हितों तथा हितधारियों के सरोकारों के बीच संतुलन बनाकर एक स्वीकार्य समझौते तक पहुंचने की कला है।

अपनी अनिश्चितताओं की वजह से जीएम उत्पाद दुनिया भर में बहस का सबसे बड़ा मुद्दा बने हुए हैं। भारत में जीएम खाद्य फसलों की श्रृंखला में बीटी बैंगन ऐसा पहला उत्पाद है जिसकी व्यावसायिक अनुमति देने पर विचार किया गया है। इस तरह बीटी बैंगन वह धुरी बन गया है जिसके इर्द-गिर्द अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंताएं बड़ी शिद्दत के साथ उठाई गईं।

जिनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (जी.ई.ए.सी.) द्वारा वर्ष 2009 में बीटी बैंगन के व्यावसायीकरण की

अनुशंसा के बाद इस मसले पर जो तीखी बहस हुई, उसने जीएम खाद्य के समर्थकों और विरोधियों के बीच एक गहरी विभाजन रेखा खींच दी। जीएम प्रौद्योगिकी के समर्थक इसे खाद्य सुरक्षा का बेदाग वैज्ञानिक समाधान मानते हैं। लेकिन ऐसा करते समय वे जीएम फसलों से जुड़े खतरों, प्रौद्योगिकी पर बड़ी कंपनियों के मालिकाना हक और बीजों पर किसानों के अधिकार से सम्बंधित जटिलताओं, उपभोक्ताओं की पसंद और सबसे बढ़कर, जैव एवं खाद्य सुरक्षा जैसे मसलों की अवहेलना कर रहे थे।

इस बीच, बीटी बैंगन के विरोध में अलग-अलग चिंताएं एक मंच पर आ गईं और जीएम प्रौद्योगिकी 'लालची बहुराष्ट्रीय कंपनियों' का पर्यायवाची बन गई। किसान संगठन, स्थानीय समूह, वामपंथी विचारधारा वाले प्रगतिशील संगठन, पर्यावरणवादी एनजीओ और घरेलू कीटनाशी कंपनियों की लॉबिंग करने वाली ताकतें अपने एक साझा शत्रु के खिलाफ एकजुट हो गईं। नीतिगत प्रकिया के मामले में विवाद तब और जटिल हो गया, जब बीटी बैंगन की बहस में सामाजिक संगठन और वैज्ञानिक विशेषज्ञ इस या उस पक्ष में एक साथ आ गए।

भारत में बीटी बैंगन

बीटी बैंगन महाराष्ट्र हाइब्रिड सीड कंपनी (महिको)

द्वारा बैंगन की जिनेटिक इंजीनियरिंग से विकसित प्रजाति है। इसका विकास बैंगन के पौधे में 'cry1Ac' नामक जीन को पहुंचाकर किया गया है। इसके पक्ष में दलील दी गई कि इससे फसल में फ्रूट एंड शूट बोरर और फ्रूट बोरर जैसे कीटों के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाएगी। ये कीट फसलों की 60 फीसदी क्षति के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। कीटनाशकों के बहुत अधिक इस्तेमाल से छोटे व सीमांत किसानों की कृषि लागत तो बढ़ जाती है, लेकिन कीटों के प्रकोप से छुटकारा अक्सर नहीं मिल पाता है। कीटनाशकों के बहुत अधिक इस्तेमाल से सब्ज़ियां स्वास्थ्य के लिए घातक भी हो जाती हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बीटी बैंगन कीट नियंत्रण का पुख्ता समाधान पेश करता है, जिससे कीटनाशकों के इस्तेमाल में कमी आएगी, कृषि लागत में गिरावट आएगी और बैंगन की पैदावार बढ़ेगी।

लेकिन यह भारत (और दुनिया) की खाद्यान्न की कमी की समस्या का समाधान नहीं करता। भारत में बीटी कपास का अनुभव बताता है कि इस फसल की सफलता संदेह से परे नहीं है। लंबे समय में कीट जीएम फसलों के खिलाफ भी प्रतिरोध क्षमता अर्जित कर लेते हैं। इसके चलते और अधिक कीटनाशकों का इस्तेमाल ज़रूरी हो जाता है।

इससे भी अधिक चिंता स्वास्थ्य को लेकर है। पौधे में जिस गैर-सटीक विधि से नए जीन का प्रवेश करवाया जाता है, उससे पहले से मौजूद जीन्स के अस्त-व्यस्त होने अथवा उनमें परिवर्तन की आशंका बढ़ जाती है। इससे पौधे के गुणों में भारी बदलाव होता है और यह उसके जीन्स को कुछ अलग बर्ताव करने की दिशा में आगे बढ़ाता है। ऐसे में उसके फल का सेवन करने पर एलर्जिक रिएक्शन का खतरा बढ़ जाता है।

इससे ही जुड़ी एक चिंता यह भी है कि जिनेटिक परिवर्तन की प्रक्रिया पौधे के जीव विज्ञान को नए सिरे से सृजित कर सकती है। इसका परिणाम पौधे में ज़हर उत्पन्न होने के रूप में सामने आ सकता है। बैंगन को लेकर कहा जाता है कि इसमें ज़हर पैदा होने का खतरा इसलिए भी ज़्यादा होता है क्योंकि यह सोलेनसी कुल का सदस्य है जिनकी प्रकृति विष उत्पन्न करने की होती है। पुरकायस्थ एवं रथ का कहना है कि ऐसी आशंकाओं का समाधान इसे जारी करने से पहले परीक्षण करके किया जा सकता है।

निगरानी अवधि को लेकर भी विवाद है, क्योंकि अधिकांश मामलों में विष का असर दीर्घकाल में ही नज़र आता है। किसी जीएम फसल को व्यावसायिक रूप से जारी करने के बाद उसकी मंज़ूरी को रद्द करने की पद्धति का अभाव भी अक्सर चर्चा में रहा है।

भारतीय संदर्भ

बीटी बैंगन को लेकर कुछ सरोकार तो समान हैं, लेकिन कई चिंताएं भारतीय परिवेश की विशिष्टताओं के कारण उत्पन्न हुई हैं। भारत में बैंगन काफी कम पका या अधपका ही खाया जाता है और इसलिए इसके पौधे में ज़हर से खतरा बढ़ जाता है। इसके अलावा आयुर्वेद और सिद्ध जैसी पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों की औषधियों में भी कच्चे बैंगन का इस्तेमाल किया जाता है। अगर पौधे में विष होगा तो लोगों के स्वास्थ्य पर इस तरह से भी खतरा बढ़ेगा। आयुर्वेद के वैद्य कहते हैं कि बैंगन की 14 अलग-अलग किस्मों का इस्तेमाल चिकित्सा में किया जाता है। हर प्रजाति के बैंगन के अपने विशिष्ट गुण होते हैं। इस तरह बैंगन में जिनेटिक परिवर्तन होने से इन किस्मों के गुण भी बदल जाएंगे।

इन चिंताओं से जैव विविधता को पैदा होने वाले खतरे के सवाल भी उठते हैं। वर्तमान में देश भर में बैंगन की 2500 से भी अधिक किस्में उगाई जाती हैं। इस बात की पूरी आशंका है कि जिनेटिक बदलाव इसी प्रजाति की दूसरी किस्मों के अलावा अन्य सम्बंधित प्रजातियों में भी

होगा और जैव विविधता और भी कमज़ोर होती जाएगी।

वैसे कहा जा रहा है कि जिनेटिक इंजीनियरिंग से किसी पौधे को इकोसिस्टम में प्रतिस्पर्धा में कोई विशेष लाभ नहीं मिलता मगर दिक्कत यह है कि जैव विविधता पर असर केवल टेक्नॉलॉजी की वजह से ही नहीं होगा, बाज़ार भी जैव विविधता में कमी के लिए ज़िम्मेदार होगा। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कृषि पर कॉरपोरेट प्रभाव में उन्हीं किस्मों को बढ़ावा दिया जाएगा जो अधिक पैदावार देंगी। इससे भी मोनोकल्चर को प्रोत्साहन मिलेगा।

यहीं पर जीएम प्रौद्योगिकी पर स्वामित्व और किसानों के अधिकारों का भी सवाल उठता है। बीटी बैंगन को विकसित करने में इस्तेमाल की गई विधि का संरक्षण कई पेटेंट्स के माध्यम से किया गया है। इससे महिको और उसकी साझेदार कंपनी मोन्सेंटो को कृषि जैव प्रौद्योगिकी पर असीमित प्रभाव प्राप्त हो गया है। यही वजह है कि बीटी कॉटन और गैर बीटी कॉटन के बीज के दामों में ज़मीन-आसमान का अंतर है (चीन ने अपनी स्वदेशी बीटी प्रौद्योगिकी विकसित की है, इसलिए बीटी बीजों के दाम गैर बीटी बीजों की तुलना में थोड़े ही ज़्यादा हैं)। इसके विपरीत, भारत में कृषि जैव प्रौद्योगिकी में अनुसंधान और विकास में सरकारी प्रयास निजी क्षेत्र की तुलना में कहीं नहीं बैठते। इसलिए अगर जीएम बाज़ार पर किसी कंपनी विशेष का एकाधिकार हो जाए तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हालांकि महिको ने cry1Ac जीन सम्बंधी शोध के लिए कुछ सरकारी संस्थानों के साथ करार किए हैं, लेकिन इन करारनामों में कई शर्तें रखी गई हैं। इन शर्त्तों के चलते ये संस्थान cry1Ac जीन आधारित हाईब्रिड बीजों का विकास नहीं कर सकते।

इसके अलावा उपभोक्ताओं की पसंद का भी सवाल है। भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण द्वारा ऐसी प्रणाली पर विचार किया जा रहा है जिसमें जीएम और गैर जीएम बैंगन पर स्पष्ट लेबल हो। इससे उपभोक्ताओं के लिए दोनों में फर्क करना आसान हो जाएगा। हालांकि एक आशंका यह भी है कि देश में ऐसी प्रणाली लागू होने के बावजूद दोनों में फर्क करने की समस्या बनी रहेगी क्योंकि भारत में पैकेजिंग में बैंगन या अन्य सब्ज़ियां बहुत कम मात्रा में बेची जाती हैं। भारत में छोटे-छोटे रकबों के मद्देनज़र कृषि विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि इस बात की उम्मीद बहुत कम है कि यहां जीएम और गैर जीएम फसलों को खेती करने के दौरान अलग-अलग रखा जा सकेगा। जीएम और गैर जीएम फसलों को अलग-अलग रखने की कोई सटीक व्यवस्था नहीं होने के कारण पुरकायस्थ एवं रथ का मानना है कि जीएम फसलें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारी खाद्य श्रृंखला में दाखिल हो चुकी हैं।

दुनिया में कई किस्मों की जीएम फसलें उगाई जाती है, उनका सेवन भी किया जाता है। इनमें भारत भी शामिल है, जहां बीटी कपास बोया जाता है। इसके मद्देनज़र पुरकायस्थ एवं रथ इस दलील को काफी लचर मानते हैं कि बीटी बैंगन के व्यापारिक उत्पादन से विनाशकारी खतरा है।

जीएम खाद्य को लेकर सार्वजनिक तौर पर विचार-विमर्श की जो प्रक्रिया चल रही है, उसे कुछ वैज्ञानिक 'उनकी दुनिया की बारीकियों में अवांछित घुसपैठ' मानते हैं। एस. जैसोनॉफ विज्ञान और राजनीति के बीच सीमा के विवाद को लेकर कुछ और मुद्दे उठाते हैं, जैसे शासकीय नीति की 'समस्याओं' को परिभाषित कौन करेगा और यह कौन तय करेगा कि 'कैसे, कब, किसके द्वारा और किस सीमा तक' विज्ञान को समाधान उपलब्ध करवाने की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है।

यह बहस जीएम खाद्य पदार्थों की समीक्षा एवं नियमन से सम्बंधित विभिन्न मंत्रालयों जैसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, कृषि, स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं वन, वाणिज्य एवं उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण और भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के बीच पारस्परिक संवाद से भी जुड़ती है। फिर यह बात भी मामले को कहीं अधिक जटिल बना देती है कि कृषि राज्य का विषय है और हर राज्य की अपनी कृषि नीति है। इसलिए बीटी बैंगन को लेकर किसी भी निर्णय में राज्यों के कृषि मंत्रालयों को भी ज़रूर शामिल किया जाना चाहिए। अलग-अलग राज्यों द्वारा इस मामले में अपनाए गए अलग-अलग मतों से इस बात का महत्त्व रेखांकित होता है।

घटनाक्रम

केंद्र सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग में जिनेटिक मैनिप्यूलेशन रिव्यू कमिटी (आर.सी.जी.एम.) का सम्बंध प्रयोगशाला-आधारित अनुसंधान, ग्रीनहाउस प्रयोगों और मैदानी परीक्षणों से है। वर्ष 2004 में आर.सी.जी.एम. ने महिको द्वारा विकसित बीटी बैंगन की सात किस्मों के अलग-अलग जगहों पर परीक्षण की अनुमति दी थी। नतीजों से उत्साहित होकर उसने जिनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (जी.ई.ए.सी.) को व्यापक पैमाने पर मैदानी परीक्षणों की अनुशंसा की। केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के तहत कार्यरत जी.ई.ए.सी. वह वैधानिक संस्था है जिसे बीटी फसलों के व्यापक पैमाने पर मैदानी परीक्षणों, प्रायोगिक तौर पर बीजों के उत्पादन और उन्हें व्यावसायिक तौर पर जारी करने का अधिकार है।

वर्ष 2006 में महिको ने जैव सुरक्षा सम्बंधी आंकड़े जी.ई.ए.सी. को प्रस्तुत कर व्यापक परीक्षणों की अनुमति मांगी। जी.ई.ए.सी. ने ये आंकड़े अपनी वेबसाइट पर प्रदर्शित कर लोगों को प्रतिक्रिया देने को कहा। सामाजिक संगठनों ने इसे लेकर कई चिंताएं जताईं। इन चिंताओं का समाधान करने के लिए जी.ई.ए.सी. ने एक विशेषज्ञ समिति-1 गठित कर दी। इस बीच मैदानी परीक्षणों के सम्बंध में सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका भी दायर कर दी गई। सुप्रीम कोर्ट ने मैदानी परीक्षणों को रोकने के आदेश जारी कर दिए।

वर्ष 2007 में विशेषज्ञ समिति-1 ने सात अतिरिक्त जैव सुरक्षा परीक्षणों की सिफारिश की। हालांकि इसने साथ ही व्यापक पैमाने पर परीक्षणों की मंज़ूरी भी दे दी। इस पर सुप्रीम कोर्ट ने कुछ शर्तों के साथ मैदानी परीक्षणों पर लगाई रोक हटा दी। इसके बाद जी.ई.ए.सी. ने भी बीटी बैंगन के व्यापक मैदानी परीक्षणों की अनुमति दे दी। जी.ई.ए.सी. के निर्देशानुसार भारतीय सब्ज़ी अनुसंधान संस्थान को देश के विभिन्न अनुसंधान संस्थानों में बीटी बैंगन पर अनुसंधान करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी।

सब्ज़ी अनुसंधान संस्थान ने 2009 में परीक्षणों के जो नतीजे प्रस्तुत किए, उससे देश-विदेश के विशेषज्ञों में चिंता की लहर फैल गई। इस वजह से जी.ई.ए.सी. को विशेषज्ञ समिति-2 गठित करनी पड़ी ताकि वह सब्ज़ी अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रस्तुत जैव सुरक्षा आंकड़ों का परीक्षण कर इस सम्बंध में पैदा हुई चिंताओं का समाधान कर सके। इस विशेषज्ञ समिति-2 ने 14 अक्टूबर 2009 को अपनी रिपोर्ट पेश की जिसके आधार पर जी.ई.ए.सी. ने बीटी बैंगन की पर्यावरणीय मंज़ूरी की सिफारिश की और इस सम्बंध में अंतिम निर्णय लेने का दायित्व सरकार पर छोड़ दिया।

हालांकि विशेषज्ञ समिति-2 की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने के बाद उस पर कड़ी प्रतिक्रियाएं भी सामने आईं। व्यापक विरोध के चलते तत्कालीन पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने विशेषज्ञ समिति-2 की रिपोर्ट पर सुझाव मंगाते हुए इस मुद्दे पर राष्ट्रव्यापी विचार-विमर्श की प्रक्रिया शुरू करने की घोषणा कर दी ताकि जनहित और राष्ट्रहित में किसी सर्वसम्मत व सजग निर्णय पर पहुंचा जा सके।

जनवरी और फरवरी 2010 में देश के विभिन्न शहरों में संवाद की प्रक्रिया शुरू की गई। इनमें रमेश के सामने अपने विचार व्यक्त करने के लिए वैज्ञानिकों, कृषि विशेषज्ञों, किसान संगठनों, उपभोक्ता समूहों और गैर सरकारी संगठनों को आमंत्रित किया गया था। जन सुनवाई कोलकाता, भुवनेश्वर, अहमदाबाद, नागपुर , चंडीगढ़, हैदराबाद और बैंगलुरु में आयोजित की गईं। विचार-विमर्श की इतनी लंबी-चौड़ी कवायद के बाद अंततः जयराम रमेश ने 9 फरवरी 2010 को बीटी बैंगन के पर्यावरणीय रीलीज़ पर स्थगन की घोषणा कर दी। स्थगन तब तक के लिए था, जब तक कि स्वतंत्र वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह साबित नहीं हो जाता कि बीटी बैंगन हर तरह से सुरक्षित है।

विज्ञान का राजनीतिकरण

आजकल राजनीति और विशेषज्ञता के बीच संवाद इस बात पर टिका है कि तमाम विषयों पर तरह-तरह की विशेषज्ञ राय उपलब्ध होती है। और तो और, विशेषज्ञता का स्रोत सिर्फ अकादमिक जगत नहीं रह गया है। ऐसा ही एक विशेषज्ञ समूह है लोक प्रबंधन का।

इस संवाद का एक पहलू यह भी है कि राजनीतिक फैसलों को तर्कसम्मत साबित करने के लिए विशेषज्ञ राय का सहारा लिया जाता है। इसी के चलते राजनीति पर अक्सर आरोप लगते हैं कि वह अलग-अलग मतों में से इस तरह से चयन करती है कि वह अपने अजेंडा को सही ठहरा सके। इसी से विज्ञान का राजनीतिकरण बढ़ा है। नीतिगत फैसलों को वैधता प्रदान करने के लिए विशेषज्ञ राय पर बढ़ती निर्भरता के चलते ज़िम्मेदारी और जवाबदेही के अहम सवाल उठते हैं, खासकर प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र में। इस तरह विशेषज्ञों की सलाह सार्वजनिक नीति को वैधता ज़रूर प्रदान करती है, लेकिन यह विशेषज्ञों को आम लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं बनाती।

तो क्या जवाबदेही के प्रति सरोकार एक जनप्रतिनिधि को इस बात की अनुमति देते हैं कि वह विशेषज्ञों की एक वैधानिक समिति की अनुशंसाओं को हाशिए पर रख दे? यही मुद्दा बीटी बैंगन पर हुए विचार-विमर्श के दौरान भी उठा। जयराम रमेश ने 9 फरवरी 2010 को बीटी बैंगन की पर्यावरणीय रीलीज़ सम्बंधी जी.ई.ए.सी. की अनुशंसा पर यह कहते हुए स्थगन दे दिया कि उनका फैसला 'विज्ञान के प्रति जवाबदेह और समाज के प्रति संवेदी है।' उन्होंने कहा, 'बीटी बैंगन को रीलीज़ करने से पहले ज़िम्मेदार सामाजिक संगठन जिस अध्ययन की बात कर रहे हैं, जनता की राय के प्रति संवेदनशीलता के लिहाज़ से, उसे ज़रूर किया जाना चाहिए।' साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि जी.ई.ए.सी. को इस मामले में निर्णय लेने का अधिकार है। जनता की राय पर ज़ोर देना विज्ञान, विशेषज्ञता और राजनीति के बीच पारस्परिक संवाद के 'विस्तृत सहभागिता मॉडल' का प्रतिनिधित्व करता है। यह मॉडल कहता है, 'विज्ञान महत्त्वपूर्ण है, लेकिन प्रासंगिक ज्ञान का यही एकमात्र रूप नहीं है। नागरिक भी ज्ञान के उपयोगकर्ता, समालोचक और जनक होते हैं।' इस मॉडल के अनुसार बहुमत की राय कार्यविधि सम्बंधी वैधता और ज्ञान की गुणवत्ता दोनों सुनिश्चित करती है।

हालांकि सी.के. राव का मानना है कि केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के इस निर्णय से नियमन को लेकर अनिश्चितता पैदा हो गई है और देश में कृषि जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भावी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर इसका असर पड़ना तय है। इस स्थगन से वे लोग खुश हो सकते हैं जो जनता का प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, लेकिन आम लोगों के हित में सुरक्षित प्रौद्योगिकी का विकास खतरे में पड़ सकता है।

इससे जनहित का सवाल उठने के साथ ही यह मसला भी खड़ा होता है कि यह कौन तय करेगा कि जनहित में क्या शामिल है। यह मुद्दा भी उठता है कि विज्ञान और वैज्ञानिक विशेषज्ञता तथा राजनीति और सरकारी नीति के बीच की सीमाएं कहां हैं। स्वयं अपनी ही विशेषज्ञ समिति की अनुशंसाओं पर स्थगन लगाकर मंत्रालय ने वैज्ञानिक विशेषज्ञों को उनकी हदें भी बता दीं।

इन सीमाओं की निगरानी प्रायः काफी सजगता से की जाती है। यह कहा गया कि एक ओर वैज्ञानिक तर्क थे तो दूसरी ओर पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा आयोजित जन सुनवाइयों में 'अनियंत्रित' भीड़ थी। राव के अनुसार:'वैज्ञानिक तर्कों पर भावनाओं के हावी होने से नीति-निर्धारण का और भी ज़्यादा राजनीतिकरण हो गया है। जीएम फसलों के जैव सुरक्षा मूल्यांकन सम्बंधी महत्त्वपूर्ण विज्ञान आधारित प्रयोगों का स्थान राजनीतिज्ञों और सड़कों पर प्रदर्शन करने वाले पेशेवर प्रदर्शनकारियों की सनक ने ले लिया है। पर्यावरण मंत्रालय ने उन भय फैलाने वाले और मतिभ्रम के शिकार सामाजिक कार्यकर्ताओं का समर्थन किया है, जिन्हें हर जगह बुराई ही नज़र आती है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो आने वाले समय में देश आधुनिक कृषि जैव प्रौद्योगिकी का पूरा लाभ उठाने में सफल नहीं होगा।'

इस तरह का सामाजिक-तकनीकी द्वंद्व हमें राजनीति और विज्ञान के बीच सम्बंधों की प्रकृति पर विचार करने को बाध्य करता है। एम. बी. ब्राउन कहते हैं कि प्रतिनिधित्व की धारणा विज्ञान और लोकतांत्रिक राजनीति दोनों में निहित है। वैज्ञानिक प्रतिनिधित्व का सम्बंध प्राकृतिक दुनिया में घटित घटनाओं और तत्त्वों से होता है। लोकतांत्रिक राजनीति में, जहां चुने हुए लोग कई लोगों की ओर से निर्णय लेते हैं, प्रतिनिधित्व का सम्बंध अधिकार-सुपुर्दगी, जवाबदेही,

सहभागिता, सादृश्य और विचार-विमर्श से होता है। अर्थात दोनों ही मामलों में प्रतिनिधित्व यथार्थ की नकल करता है और उसे परिवर्तित करता है।

ब्राउन यह दलील भी देते हैं कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व की धारणा का सम्बंध इस बात से भी होता है कि प्रतिनिधि का ज्ञान और विशेषज्ञता उन लोगों के ज्ञान व विशेषज्ञता से कितनी मिलती है जिनका वह प्रतिनिधि होता है। जैसोनॉफ कहते हैं कि इस विश्लेषण से कई सारे जटिल सवाल पैदा होते हैंः क्या प्रतिनिधि सामान्य इच्छा की बात करे? अथवा वह यह माने कि लोगों की समझ अज्ञान और अविवेक से पैदा होती है? ऐसे में, उसे बहुमत की बात करनी चाहिए अथवा विशेषज्ञों व जानकार लोगों की बातों का ही समर्थन करना चाहिए?

पूर्वाग्रहों से मुक्त ज्ञान

यह चौंकाने वाली बात है कि एक ओर तो राव जीएम खाद्य पर रोक की आलोचना वैज्ञानिक तर्क और जनमत के जज़्बाती विस्फोट की तुलना के आधार पर करते हैं, वहीं जब वे उन वैज्ञानिकों की बात करते हैं जो बीटी के व्यावसायीकरण के खिलाफ हैं तो वे वैज्ञानिक विशेषज्ञता के पूर्वाग्रह से ग्रस्त रवैये को आड़े हाथों लेने लगते हैं। बीटी बैंगन की खिलाफत करने वाले विशेषज्ञों की राय को केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा अनावश्यक महत्त्व दिए जाने की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं, 'विशेषज्ञों में सबसे जाना-माना नाम पेरिस के प्रोफेसर गिल्स-एरिक सेरालिनी का है। उन्हें ग्रीनपीस ने भारतीय बीटी बैंगन के दस्तावेज़ का मूल्यांकन करने के लिए भेजा था। सेरालिनी की टिप्पणियों का सामाजिक कार्यकर्ताओं ने काफी इस्तेमाल किया।' वे आगे लिखते हैं, 'पर्यावरण व वन मंत्रालय ने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि बीटी बैंगन के विरोध के पीछे की ताकतें कौन-सी हैं - कीटनाशक व जैविक उत्पाद निर्माताओं की लॉबी और वैज्ञानिक रूप से बेबुनियाद दलीलें।'

इस तरह, अपने अजेंडा को सही ठहराने की खातिर विज्ञान के 'राजनीतिकरण' के लिए राजनीति को दोषी ठहराया जा सकता है, लेकिन इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिए कि किस सीमा तक वैज्ञानिक ज्ञान पक्षपात रहित है। इसी से जुड़ा यह सवाल भी है कि विशेषज्ञों का निजी हितों के साथ सम्बंध किस हद तक उनकी निष्पक्षता को संदिग्ध बनाता है।

विचार-विमर्श की एक सार्वजनिक बैठक में जयराम रमेश ने वैज्ञानिकों को याद दिलाया कि 'वे वैज्ञानिक के रूप में बातें करें, एनजीओ के प्रतिनिधि के रूप में नहीं।' यह उसी आम धारणा की अभिव्यक्ति थी कि वैज्ञानिक ज्ञान विचारधारा, मूल्यों अथवा बाज़ार के हितों-पूर्वाग्रहों से मुक्त होता है और एक संदर्भ-शून्य स्थिति में निर्मित होता है। लेकिन यह धारणा जांच के आगे टिकती नहीं। जी.ई.ए.सी. की प्रक्रिया के खिलाफ जो अनेक आपत्तियां दर्ज़ की गई थीं, उनमें एक यह भी थी कि समिति की अनुशंसाओं के समर्थन में केवल वे जैव सुरक्षा सम्बंधी परीक्षण थे जो स्वयं महिको द्वारा किए गए मैदानी परीक्षणों के आंकड़ों पर आधारित थे।

जी.ई.ए.सी. के भीतर ही मतभेदों ने विशेषज्ञों की प्रामाणिकता और सार्वजनिक नीति के संदर्भ में ठोस जवाब मुहैया करवाने की वैज्ञानिक ज्ञान की क्षमता पर संदेह पैदा कर दिए। जी.ई.ए.सी. में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मनोनीत पी.एम. भार्गव ने जी.ई.ए.सी. की प्रक्रिया की ईमानदारी को लेकर चिंता जताई थी। विशेषज्ञ समिति-2 की रिपोर्ट की आलोचना करते हुए भार्गव ने कहा था कि महिको ने आठ महत्त्वपूर्ण परीक्षण किए ही नहीं। यही नहीं, विशेषज्ञ समिति-1 ने 2006 में अनेक अतिरिक्त जैव सुरक्षा परीक्षण करने को कहा था। लेकिन हालांकि विशेषज्ञ समिति-2 में एक तिहाई सदस्य पहली वाली समिति के ही थे, मगर उन्होंने बीटी बैंगन का मूल्यांकन करने के दौरान उन परीक्षणों की ज़रूरत पर ध्यान नहीं दिया।

विशेषज्ञ समिति-2 की रिपोर्ट की आलोचना के अलावा सांख्यिकी विशेषज्ञों ने सांख्यिकीय दृष्टिकोण से किए गए परीक्षणों पर भी सवाल उठाए। इन्हीं सवालों के कारण पर्यावरण एवं वन मंत्रालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'जी.ई.ए.सी. की सीमाओं को लेकर उठे तर्कों की उपेक्षा नहीं की जा सकती... ऐसा लगता है कि जी.ई.ए.सी. ने

बीटी बैंगन का अनुमोदन करने का निर्णय जिन मानदंडों के आधार पर लिया, वे उन वैश्विक मानकों से मेल नहीं खाते जिन पर भारत ने दस्तखत किए हैं।'

इस तरह, जैसा कि पुरकायस्थ एवं रथ कहते हैं, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने जी.ई.ए.सी. की अनुशंसाओं को केवल गैर-तकनीकी आधारों पर ही नहीं, बल्कि विशेषज्ञ समिति के तकनीकी निर्णयों में सटीकता के अभाव के आधार पर भी खारिज किया था।

नागरिक और विशेषज्ञ ज्ञान

मासेन और विनगर्ट तकनीकी निर्णयों की प्रक्रिया में जनता की भागीदारी को 'विशेषज्ञता का लोकतांत्रीकरण' मानते हैं। वे कहते हैं कि इससे समाज जनआस्था की कमी और नागरिकों के सशक्तीकरण की समस्या का समाधान करने की दिशा में अग्रसर होते हैं। हालांकि जन सहभागिता में कई तरह की दिक्कतें भी होती हैं। आम लोगों में तकनीकी मुद्दों की बहुत ज़्यादा समझ नहीं होती है। ऐसे में जनता की भागीदारी के साथ गंभीर नीतिगत मुद्दे पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। इस तरह के मामलों में जनता कई बार विचार-विमर्श की प्रक्रिया से दूर हट जाती है।

अलबत्ता, जब आम लोग विचार-विमर्श में शामिल होते हैं, तो भी यह स्पष्ट नहीं होता कि सहभागिता पूर्ण प्रक्रिया कैसे चलाई जाए। नागरिक पेचीदा तकनीकी मुद्दों को कैसे समझें? उनकी भूमिका कैसे परिभाषित की जाए और विचार-विमर्श का अजेंडा कौन तय करे? बीटी बैंगन की जन सुनवाइयों में भी हम देखते हैं कि यद्यपि सरकार ने जनमत का आव्हान किया था मगर नीति निर्माण की प्रक्रिया में उसका वज़न स्पष्ट नहीं था और इसके निष्कर्ष नीतिकारों पर बंधनकारी नहीं थे। यह जवाबदेही, पारदर्शिता और भागीदारी की धारणा को सीमित कर देता है।

जन भागीदारी के महत्त्व के बावजूद यह अपने-आप में कोई लक्ष्य नहीं हो सकती। कई बार व्यापक जन सहभागिता का इस्तेमाल निर्णय प्रक्रिया को स्थगित करने के औज़ार के रूप में भी किया जाता है जिससे यह बात रेखांकित होती है कि कभी-कभी भागीदारी को बढ़ाने और निर्णय को टालने के बीच टकराव होता है। एक समुचित नियामक प्रणाली के अस्तित्व में आने तक बीटी बैंगन के रीलीज़ पर अनिश्चितकालीन स्थगन इसी का एक उदाहरण है।

विशेषज्ञ असहमत क्यों?

हालांकि हमने यह बात स्थापित की है कि वैज्ञानिक ज्ञान हमेशा मूल्य निरपेक्ष नहीं होता, मगर यह मानना भोलापन होगा कि विशेषज्ञ मात्र विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर यह मानकर चलेंगे कि विशेषज्ञ न तो निष्कपट होते हैं और न ही निष्पक्ष, तो उससे लोकतांत्रिक नीति निर्माण में विशेषज्ञ सलाह की जटिल प्रकृति को समझने में कोई मदद नहीं मिलेगी। दरअसल, ज़्यादा बड़ी समस्या इस धारणा में है कि वैज्ञानिक ज्ञान पूर्ण व निश्चित होता है; यह धारणा हमेशा सही नहीं होती। इसका नतीजा यह निकलता है कि नीतिगत सवालों पर विज्ञान 'हां' या 'नहीं' के रूप में पक्का जवाब नहीं दे पाता।

निश्चित जवाब के अभाव में एक बेहतर उपाय यह है कि नई प्रौद्योगिकी के कारण जो समस्याएं दिखाई दे रही हैं, उनके जोखिम का परीक्षण कर यह अंदाज़ा लगाया जाए कि उससे मिलने वाले लाभ जोखिम की तुलना में ज़्यादा हैं या कम। मगर आजकल जोखिम का आकलन पूर्णतः निष्पक्ष कवायद नहीं मानी जाती। इस आकलन में व्यक्तिनिष्ठता इसे कमज़ोर बना देती है। जहां कुछ लोग मानते हैं कि जोखिम के वैज्ञानिक विश्लेषण से अनिश्चितता को समाप्त किया जा सकता है और आम लोगों के 'अतार्किक भय' को खारिज किया जा सकता है, वहीं अन्य लोगों का मत है कि वैज्ञानिक अनुसंधान अनिश्चितता को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता। इसका एक कारण यह भी है कि जोखिम क्या है, इसकी समझ काफी अलग-अलग होती है। किसी नई टेक्नॉलॉजी से जुड़ी 'खतरनाक' घटना के होने की संभाविता और उसके असर का सटीक आकलन कठिन होता है।

विशेषज्ञता का लोकतांत्रीकरण

देश में कृषि पद्धतियों और ज़रूरतों में विविधता को

स्वीकारना बेहद ज़रूरी है। इस विविधता के मद्देनज़र जीएम प्रौद्योगिकी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह खाद्य सुरक्षा का संपूर्ण समाधान पेश करेगी। हालांकि इसके बावजूद इस मामले में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी। जैसा कि पुरकायस्थ एवं रथ कहते हैं, माना कि हरित क्रांति से छोटे किसानों की हालत खराब हुई, लेकिन इसके बावजूद इससे उत्पादकता में बढ़ोतरी तो हुई ही। इसी तरह जीएम प्रौद्योगिकी के भी नफा और नुकसान दोनों हैं। इसलिए जीएम के कट्टर समर्थन या घोर विरोध से कृषि विकास दर और खाद्य सुरक्षा सम्बंधी सवालों के जवाब नहीं मिलेंगे।

हालांकि बीटी बैंगन के व्यावसायीकरण सम्बंधी किसी निर्णय पर पहुंचने से पहले कुछ निश्चित नीतिगत उपाय ज़रूर किए जाने चाहिए। एम.एस. स्वामीनाथन स्वतंत्र और विश्वसनीय परीक्षण पर ज़ोर देते हैं जो ज्ञान, जनता का विश्वास और वैधता की ज़रूरत को रेखांकित करता है। इसका मतलब यही है कि परीक्षण केवल फसल का विकास करने वाली कंपनी के आंकड़ों पर ही आधारित नहीं हो सकते। इसके अलावा वे एक ऐसी स्वतंत्र नियामक प्रणाली की भी वकालत करते हैं जो कृषि में जीएम प्रौद्योगिकी के तमाम पहलुओं का अध्ययन कर सके। इससे उन लोगों के प्रति विशेषज्ञों की जवाबदेही और नीति-निर्धारकों की ज़िम्मेदारी तय करने की दलील को बल मिलता है, जिनका जीवन उनके निर्णयों से प्रभावित होने वाला है।

प्रतिनिधित्व की धारणा प्रस्तुत करते हुए जैसोनॉफ कहते हैं कि विशेषज्ञ लोगों की तरफ से और उनके द्वारा अधिकृत प्रतिनिधि के तौर पर कार्य करते नज़र आना चाहिए, उनकी विचार-विमर्श की प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए जो लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए ज़रूरी भी है। इस तरह जन सहभागिता की प्रक्रिया और कार्यपालिका व न्यायपालिका जैसे नियामक संस्थानों के बीच समन्वय बहुत अहम है।

जैसा कि उपर्युक्त चर्चा से साफ है, सहभागी नीति निर्धारण प्रक्रिया के लिए नागरिकों और उनके जनप्रतिनिधियों के बीच संपर्क की प्रकृति और तकनीकी ज्ञान दोनों काफी मायने रखते हैं। यह सवाल अक्सर हमारे सामने खड़ा होता है कि एक प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र में कैसे यह सुनिश्चित हो कि नागरिक उन मुद्दों पर भी निर्णय लेने में समर्थ बनें जिनमें विशेषज्ञता वाले तकनीकी ज्ञान की ज़रूरत होती है।

यदि हम यह कल्पना करें कि एक शिक्षित, बुद्धिमान और चिंतित नागरिक प्रमाणों का आकलन करके एक सही निर्णय तक पहुंच सके, तो क्या उनका निर्णय कम जानकार लोगों से ज़्यादा वज़न रखेगा? और यदि ऐसा नागरिक सार्वजनिक नीति के किसी बढ़िया विद्यालय से स्नातक हो, और यह दावा करे कि उसे सार्वजनिक नीति निर्माण की विशेषज्ञता हासिल है, तो क्या उसे यह तय करने का अधिकार होगा कि 'जनहित' क्या है? दूसरे शब्दों में, क्या नीति विशेषज्ञ के रूप में वे जनमत और तकनीकी ज्ञान दोनों को खारिज करके सचमुच ऐसे निर्णय कर सकेंगे जो 'जनहित' में हों। और ऐसी स्थिति में किन संस्थाओं या नियामक निकायों को यह काम सौंपा जाएगा कि ये लोग पूर्वाग्रहों और भ्रष्टाचरण से मुक्त रहें? बीटी बैंगन प्रकरण में नीतिगत सवालों के स्पष्ट और पूर्ण जवाब देने में वैज्ञानिक विशेषज्ञता की असमर्थता साफ नज़र आती है। जनहित, विश्वास और वैधता से सम्बंधित चिंताओं को लेकर विशेषज्ञों की सलाह पूर्वाग्रह से ग्रस्त अथवा अधूरी प्रतीत होती है। इसके बावजूद लोकतांत्रिक राजनीति में विशेषज्ञों की भूमिका बढ़ रही है और उनके निर्णय नीतिगत फैसलों का आधार बन रहे हैं।

जैसोनॉफ जवाबदेही के सम्बंध में उन तीन सवालों की ओर इशारा करते हैं, जो इस तरह की स्थिति में उठते हैं: पहला, नागरिक किसी मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए कैसे विशेषज्ञों को अधिकृत करें और कैसे ये अधिकृत विशेषज्ञ सरकार के दबावों से मुक्त रहें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विशेषज्ञ

ज्ञान का राजनीतिकरण न हो? दूसरा, नागरिक कैसे विशेषज्ञों को लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के मानकों और मानदंडों के प्रति जवाबदेह बनाएं? और तीसरा, विशेषज्ञों को जवाबदेह बनाने के लिए नागरिक किस तरह पर्यवेक्षक की भूमिका निभाएं?

बीटी बैंगन पर विचार-विमर्श के दौरान हमने देखा कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कृषि, पर्यावरण, नैतिकता, बौद्धिक संपत्ति अधिकार कानून और स्वास्थ्य से जुड़े विशेषज्ञ या तो एक-दूसरे से असहमत थे अथवा एक-दूसरे के साथ मिलकर काम कर रहे थे। हमने यह भी देखा कि जन सुनवाइयों ने आम नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने का मंच मुहैया करवाया। इससे भी महत्त्वपूर्ण, नीतिगत समस्या को परिभाषित करने, सम्बंधित हितधारियों की सीमाएं तय करने और इस मामले में अंतिम निर्णय पर अपना एकाधिकार सुरक्षित रखने में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की भूमिका भी देखी। एक समानांतर नियामक संस्था के रूप में न्यायपालिका भी अपनी भूमिका अदा करते नज़र आई। अलबत्ता, तकनीकी विशेषज्ञता की मांग करने वाले मुद्दों पर निर्णय देने में न्यापालिका की क्षमता को लेकर सवाल बरकरार हैं।

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि बीटी बैंगन और दरअसल किसी भी नई प्रौद्योगिकी के समाज में पदार्पण का मसला केवल विज्ञान तक सीमित नहीं रहता है, बल्कि उसकी जड़ें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों से भी जुड़ी होती हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***